भारतीय संस्कृति में शंकरदेव का महत्व

- डॉ. प्रांजल कुमार नाथ

सार संक्षेप :

असमीया संस्कृति तथा साहित्य शंकरदेव के बिना अपूर्ण है। उनके समय में असम तथा उत्तर-पूर्व चारों ओर से अंधकार के दल-दल में फंसे हुये थे। उन्होंने 'एक शरण नाम धर्म' के द्वारा लोगों को अपनी ओर खींचते हुए असमवासियों को उस दल-दल से निकालने का प्रयास किया। उन्होंने बारह वर्ष सम्पूर्ण भारत भ्रमण कर भारतीय संस्कृति के साथ असम तथा उत्तर पूर्व को जोड़ा।

शंकरदेव ने धर्म और कला की एकत्रीकरण द्वारा सही अर्थों में असम के लोगों को स्वच्छ और शृंखल जीवन जीने की कला को सिखाया। जिसके तहत शंकरदेव को एक उन्नयनशील और संस्कृति सम्पन्न समाज गढ़ने में सफलता की प्राप्ति हुई, जो भारतीय एकता के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। महापुरुष शंकरदेव ने अपनी प्रतिभा और साहित्य द्वारा भारतीय सभ्यता और संस्कृति को असम में स्थापित किया। कहा जाता है, असम के लोगों को सबसे पहले हिन्दी से परिचय कराने का जिम्मा भी शंकरदेव के हाथों ही हुआ। भारतीय गणतंत्र और असम के लोगों को वैष्णव मठों की संकल्पना से भी परिचय कराया शंकरदेव ने ही। शंकरदेव द्वारा स्थापित सत्रिया नृत्य और बरगीत आज विश्व भर में प्रसिद्ध है। जो भारत के लिए गौरव की बात है। शंकरदेव का साहित्य और भक्ति-दर्शन असम के लोगों की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष का एक जरिया है। स्वाधीन सोच को अपने मन में लेकर चलनेवाले असमीया समाज को "धन्य धन्य भारत बरिष" कहकर तत्कालीन समय में ही राष्ट्रीयतावाद की शिक्षा देनेवाले शंकरदेव का अवदान भारतीय संस्कृति में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं ।

वीज शब्द : संस्कृति, सभ्यता, कला, धर्म, भक्ति, समाज, एकता।

भूमिका :

नव-वैष्णव धर्म के प्रचारक महापुरुष श्री मंत शंकरदेव का जन्म अक्टूबर 1449 ई. में असम के नगाँव जिला, बरदोवा के आलिपुखुरी में हुआ था। उस समय में असम सभी दृष्टियों से अंधकार में ग्रासित थे। राजनैतिक क्षेत्र में न ही शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता थी और न ही उस समय के तत्कालीन राजाओं अथवा सामंतों में आंतरिक मेलमिलाप तथा सहानुभूति का भाव। उस समय केवल आहोम और कोच ही ऐसे दो शक्तिशाली समुदाय थे जिनके राजनैतिक बुनियाद स्थिर थे। पर दोनों संप्रदायों में प्रायः संघर्ष हुआ करते थे। धर्म के नाम

पर तत्कालीन समाज में केवल विशृंखलताएँ थी। देव-देवियों की पूजा, बलि-विधान, देवदासियों का नृत्य तथा दूसरी ओर वामाचारी, तांत्रिकों की तंत्र-मंत्र का बोलबाला था। सभी जाति-जनजातियों में पूजा की अलग-अलग पद्धतियाँ प्रचलित थी। शैव और शाक्तों में तंत्र-मंत्र का प्रभाव था। कुसंस्कार, अंधविश्वास तथा व्यभिचार आदि ने समाज को अपने वश में कर लिया था और लोगों में आध्यात्मिक प्रमूल्य और नैतिक आदर्श लग भाग खत्म हो चुके थे। ऐसे में शंकरदेव ने अपने भक्ति आंदोलन के द्वारा असम के लोगों को एक साथ आगे ले जाने की कसम खाई। उनके आगमन से समाज में एक क्रांति की बाढ़ आने लगी। लोग नई तरीके से सोचने और करने पर मजबूर होने लगे।

सामाजिक दृष्टि से भी उस समय असम के सभी समुदायों में परस्पर विरोधी मान्यताएँ अधिक प्रचलन थी। अर्थ-सामाजिक दृष्टि से भी दास, किसान, मजदूर, बधूवा की स्थिति बहुत ही ख़राब थी। ब्राह्मण, कायस्थ आदि हिन्दूओं के साथ कोच, राभा, कछारी, मिरी, मिचिंग जैसे निम्न जाति के लोगों में मेल-मिलाप का अभाव और वे लोग एक दुसरे को घृणा कि दृष्टि से देखते थे। हिन्दू, मुस्लिम की बात तो अलग ही थी। उच्च-नीच, जात-पात, शिक्षा, जीवन जीने की तरीका आदि विभिन्न कारणों से सभी जातियों में सहयोगिताओं का बिलकुल ही अभाव था।

शंकरदेव ने 15 वीं शताब्दी में असम में वैष्णव धर्म का प्रचार किया और जिसके लिए उन्होंने शंकरचार्य द्वारा आठवीं शताब्दी में स्थापित अद्वैतवाद दर्शन को अपनाया। शंकरदेव ने अद्वैत वेदांत दर्शन को आधार मानकर भागवत-महापुराण के इस दर्शन के द्वारा अपने धर्म की प्रचार-प्रसार की। जिस दर्शन के अनुसार आत्मा और परमात्मा द्वैत (अलग-अलग) नहीं है। यथा -

‘एक ब्रह्म आछे सर्वदेहत प्रकटे ।
जेन एक आकाश प्रत्येक घटे घटे ॥
जलत सूर्यक जे देखि भीन भीन ।
एहि मते जनिबा ब्रह्मतो भेदहीन ॥’[1]

(भावार्थ : प्रत्येक जीवों में उस परम ब्रह्म निवास करते है। अर्थात आत्मा और परमात्मा एक ही है। जिसका रूप तो अलग-अलग हैं, पर मूल सिर्फ उस परमब्रह्म से ही जुड़ा हुआ है ।)

धर्म प्रचार को मूल में रखकर उन्होंने संगीत कला, चित्रकला, ललित कला, स्थापत्य कला आदि का भी उत्कर्ष किया। कला की साधना द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को नए जीवन-शैली और उन्नत सामाजिक दर्शन मिले, इसी कारण शंकरदेव ने धर्म और कला दोनों को मिश्रित कर दिया था। इस बात ने लोगों के मन को अधिक आह्लादित किया और उन्हें एक नई

दृष्टि के लिए उम्मीद की दिया जलायी। लोगों को धर्म के साथ-साथ मनोरंजन भी मिलता गया ।

शंकरदेव और भारतीय संस्कृति :

शंकरदेव ने सर्व-भारतीय भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि के आधार पर ही असम में 'नव-वैष्णव' धर्म का स्थापन किया। सम्पूर्ण बारह वर्षों तक पूरे भारतवर्ष के विभिन्न तीर्थ स्थानों को दर्शन करने के बाद साधू-संतों से मिलकर जो अभिज्ञताएँ प्राप्त किए थे उसी का बृहद उपलब्धि उनके द्वारा प्रचारित 'एक शरण नाम धर्म' है। जिसमें विभिन्न देव-देवियों के स्थान पर एक ईश्वर की पूजा होती है और जहाँ सबकों सामान स्थान प्राप्त है। शंकरदेव द्वारा प्रचारित 'एक शरण नाम धर्म' में जातिभेद का कोई स्थान नहीं था। समाज के सभी वर्गों को खचाकर पिछड़ी और निम्नवर्ग के लोगों को आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनाने के लिए शंकरदेव सदा प्रयत्नशील रहे थे। उनके वैष्णव संप्रदाय का मूल आधार श्रीमद्भगवत है। श्रीमद्भगवत को ही आधार मानकर उन्होंने पूर्वोत्तर में एक धार्मिक लहर की पैदा की। शंकरदेव से पहले भी यहाँ धार्मिक क्षेत्रों में शैव, शाक्त, बौद्ध आदि अनेक संप्रदायों का उदय हुआ था और उस समय प्रत्येक संप्रदाय खुद को श्रेष्ठ सिद्ध करने में तथा दूसरों को नीचा दिखाने में लगे हुए थे। दूसरी ओर शक्ति की उपासना करनेवाले लोग भी पूजा-पाठ, यज्ञ, बलि-विधान आदि में मत्त हो रहे थे। उन्होंने इन सब से ऊपर उठकर सभी धर्मों के प्रति सद्भाव का प्रदर्शन करते हुए बलि-विधान का विरोध कर सभी के प्रति मानवीयता का परिचय दिया। मानवीयता, दुसरे धर्मों के प्रति सम्मान का भाव आदि ही भारतीय संस्कृति की मूलाधार हैं ।

धार्मिक दृष्टि पर ध्यान देने से मालूम पड़ता है कि, तत्कालीन समय में पूरे भारतवर्ष के साथ-साथ असम में भी श्रद्धा अथवा भक्ति के स्थान पर ढोंग तथा बाहरी क्रिया-कलापों ने धर्म को घेर लिया था। उस समय लोगों को लोभ दिखाकर, तंत्र-मंत्र द्वारा अथवा डरा-धमकाकर धर्म परिवर्तन कराया जाता था। तत्कालीन असमिया समाज में प्रचलित बहू-देव उपासना पद्धति, पूजा-पाठ, कर्मकांड, जप-तप, यज्ञ आदि के स्थान आदि इसी का उदहारण हैं और शंकरदेव ने इसके स्थान पर केवल एक ही ईश्वर की पासना पद्धति प्रचालन कर दी थी। शंकरदेव ने अनेक देवी-देवताओं को पूजने के विपरीत केवल उस परमब्रहम भगवान को पूजने की सलाह दिए थे। जिस तरह से सिर्फ पेड़ के मूल में पानी डालने से पूरे पेड़ को पानी मिल जाता है, ठीक उसी प्रकार उस भगवान कृष्ण को पूजा करने से अन्य सभी देव-देवताएँ संतुष्ट हो जाते है। मूल रूप से ईश्वर के साकार अवतरवाद को स्वीकार करते हुए भी

शंकरदेव ने मूर्ति विहीन एक ईश्वर की उपासना पर जोड़ दिया, जो भारतीय परिपेक्ष में कबीर के दर्शन से समानता रखती है।

असल में शंकरदेव एक वास्तव वादी चिंताविद थे। दार्शनिक पद्धति से ज्यादा वे व्यक्तिगत जीवन शृंखला के ऊपर अधिक महत्व देते थे और इसलिए उनके दर्शन में सांस्कृतिक तथा नैतिक प्रमुल्य को विशेष प्रधानता मिलता है। उन्होंने 'नाम घर' तथा 'सत्र' की सृजन कर लोगों में ज्ञान का परिसर बढ़ाने के लिए पोथी का पाठ कराके तत्कालीन समय में ही वे बृद्ध लोगों के बीच ज्ञान तथा शिक्षा का भी एकतरह से प्रसार करते रहे थे। शंकरदेव ने समझाया कि संसार के सभी धर्म के लोगों के प्रति हमें सद्भाव रखना चाहिए। उन्होंने अपने संप्रदाय में ब्राह्मण से लेकर चंडाल तक को स्थान दिया था। उनके इस चिंतन में भारतीय संस्कृति के एनेकता में एकता का संदेश मिलता है। उन्होंने अपने भक्तों की परंपरा में एक मुसलमान भक्त (चाँद खा) को भी साथ में लेकर घूमते थे। असल में, शंकरदेव जाति भेद तथा उच्च-नीच आदि परम्परा को समाज के लिए नकारात्मक शक्ति मानते थे। जो लोगों में उच्च-नीच, ब्राह्मण-शूद्र आदि का भेद रखते हैं, उनलोगों को उन्होंने कड़ी से कड़ी निंदा की है। ऊंच-नीच की दीवार को तोड़कर सामाजिक समानता की प्रतिष्ठा करने में शंकरदेव हमेशा प्रयत्नशील रहे थे। एक उदाहरण प्रस्तुत है-

किरात कछारी
खाचि गारो मिरी
यवन कंक गोवाल
असम मलूक
धोवा ये तुरुक
कुबच म्लेच्छ चंदाल ॥
आनो पापी नर
कृष्ण सेवकर
संगत पवित्र हय
भकति लभिया
संसार तरिया
बैकुंठ सूखे चलय ॥[2]

(भावार्थ : शंकर के अनुसार लोग किरात, कछारी, ख़ासी, गारो आदि किसी भी संप्रदाय से हो भक्ति ही सबका उद्धारक हैं। भगवान की भक्ति से लोगों को वैकुंठ सुख मिलता है। भक्ति से बढ़कर संसार में और कुछ भी नहीं है। जात-पात आदि बेकार की चीज है ।)

शंकरदेव ने असम तथा उत्तरपूर्व में एक ऐसे संप्रदाय की कल्पना की जिसमें समाज के सभी वर्गों को एक साथ आगे लाया जा सके और असम तथा भारत एकता की शक्ति से शक्तिमान हो जाए। जिसके लिए शंकरदेव ने हिन्दू, मुस्लिम, सीख, ईसाई आदि सबको उस परम सत्य भगवान का ही अंश माना हैं। मनुष्य की बात तो अलग है, शंकरदेव ने पेड़-पौधे, पतंग, पक्षी तथा सभी जड़-जीव आदि में भी भगवान के उस असीम रूपों की कल्पना की हैं-

'यत जीव जंगम किट पतंगम
अग नग जग तेरी काया ।
सबकहु मारि पूरत उहि उदर
नाही करतू भूतदाया ।[3]

(भावार्थ : संसार के हर एक चीज उस परमब्रहम का ही अंश है। जितने भी जीव तथा जड़ हैं, प्रत्येक चीजों के कण-कण में वह परमब्रहम विराजमान है। वही कार्य है और कारण भी ।)

शंकरदेव अपनी भक्ति के प्रसार में साहित्य और कला को बहाना बनाया। उनका साहित्य मानव वादी चिंतन के साथ सांस्कृतिक उत्कर्ष का एक महत्वपूर्ण साधन हैं। साधारण लोगों के चिंतन को उच्च बनाना, उनके दिलों में भाईचारा की भावों को पैदा करना आदि उनके धर्म की सबसे खाच बात थी, जिसे उन्होंने अपने साहित्य में लिपिबद्ध किया। वे धार्मिक शुद्धिकरण से ज्यादा नैतिक तथा मन की शुद्धिकरण को महत्व देते थे। उनके साहित्य लोगों को अपनी ओर खींचते है। शंकरदेव ने संस्कृत के क्लिष्ट भाषा से भगवद तथा अन्य भक्ति परक ग्रन्थों का अनुवाद ब्रजबूली (जिसे असमिया में ब्रजावली) भाषा में करके विषय को लोगों के लिए और अधिक सहज और बोधगम्य बनाया।

शंकरदेव धर्म को कला का एक रूप मानते हुये उन्होंने काव्य, नाटक, बरगीत, टोटय, भटिमा, नाम-प्रसंग आदि की रचना की। शंकरदेव के नाटकों को (जिसे भाओना कहा जाता है) उसे नामघरों में प्रदर्शन भी किया करते थे। असल में शंकरदेव बहुमुखी प्रतिभा के अधिकारी थे, वे एकसाथ परिचालक, वाद्यायंत्री, अभिनेता, गायक, गीतकार, संगीतकार, मेकअप आर्टिस्ट, प्रसाधक, नाट्यकार, के अलावा चित्रकार भी थे। उन्होंने चित्रों के द्वारा लोगों को भगवान की लीलाओं का अंकन कर उसके द्वारा अपनी और आकर्षित कराते थे। उन्होंने 16वीं शताब्दी में ही 'वृंदावनी वस्त्र' की सृजन की। 'वृंदावनी वस्त्र का शाब्दिक अर्थ है 'वृंदावन का कपड़ा'। जिसे शंकरदेव, माधवदेव तथा मथुरादास बूढ़ा आता और उनके कुछ सहयोगियों ने बुने हुए रेशम से बनाया था, जिस बस्त्र में श्री कृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध तक की समस्त घटना को चित्रित किया गया हैं। यह भी एक अद्भुत कला ही है।

यद्यपि इन सबके माध्यम से शंकरदेव अपनी भक्ति का ही प्रचार कर रहे थे, लेकिन वे अपने मूल लक्ष्य को साथ में लेकर कला के साधना द्वारा समाज के सभी लोगों को उसमें भी आह्लादित कराते गए थे ।

वैश्वीकरण के इस समय में किसी भी देश को आगे बढ़ने के लिए अर्थ की जरूरत होती है। शंकरदेव ने कभी भी घर में बैठकर भगवान के उपासना में ही जीवन व्यथित करने के लिए सलाह नहीं दिया। शंकरदेव लोगों को मर्यादा के साथ जीवित रहने के लिए कर्म-संस्कृति पर अधिक बल दिया और लोगों को भी कर्म-संस्कृति पर विशेष महत्व देने के लिए सलाह दिये थे। अपने नाटकों के लिए उस समय में ही मुखौटा, कपड़े आदि बनाने के लिए मुख-शिल्पी, दर्जी, कुम्हार, कहार, नाटक के लिए आवश्यक चीजें बनानेवाले कारीगर आदि को शिल्पी का मर्यादा देकर उन्होंन उनलोगों को जीवन जीने का तरीका भी सिखाया। जिससे उन लोगों की अर्थ नैतिक बुनियाद मजबूत होती थी और उन्हें कलाकार का मर्यादा भी प्राप्त होता था। उन्होंने ने 'सत्र' में रहनेवाले भक्तों को विभिन्न कर्मों में आग्रहित कराकर उन्हें योग तथा अध्यात्मिक शिक्षा भी प्रदान करते थे। एक देश की विकास के लिए लोगों को शारीरिक और मानसिक सभी तरह से सशक्त रहना अत्यंत ही आवश्यक है। उन्होंने ने लोगों को सभी तरह से शक्तिशाली बनाने कि कौशिश कर रहे थे ।

शंकरदेव का साहित्य, शंकरदेव की सोच असमीया समाज के लिए, असम के लिए बहुत ही प्रेरणाप्रद है। उनके साहित्य तथा नाटक का विषय धर्म तथा सत्य की विजय और अधर्मी और तथा बुरे लोगों की पराजय है। अभिनय, नृत्य-गीतों का प्रदर्शन, बाद्य-यंत्र आदि बजाने की कला और चित्रों के अंकन आदि के माध्यम से शंकरदेव ने लोगों में परिवर्तन लाया। शंकरदेव ने अपने प्रिय शिष्य माधवदेव और जिन बारह कला-कौशली के साथ कपास और रेशम के धागे से जिस भारत गौरब 'बृंदावनी बस्त्र' का तैयार किया वह उनके सांस्कृतिक सृजनशीलता का अपूर्व निदर्शन है, जिसे आज दुनिया भर के लोग जानते है ।

शंकरदेव द्वारा स्थापित नामघर, सत्र वर्तमान समय के उत्तर-पूर्व की सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक केंद्र का मूल है। शंकरदेव के सत्र को मध्य युग के बौद्ध-संघ (Buddhist Monastery) के साथ तुलना की जा सकती है। नाम घर और सत्र दोनों ही वर्तमान युगों के जातिय एकता और उन्नयन का केंद्र स्थल है। इन सत्रों पर अनेक विदेशी तथा भारतीय पंडितों ने शोध भी किया हैं। नाम घर और सत्र की विशेषता यह है कि इसमें समानता की भावना बनी रहती है। जहाँ पर कोई किसी के लिए थोड़ा सा भी भेदभाव नहीं रखता उनका परिचय सिर्फ वहाँ 'भक्त' के रूप में दी जाती है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि शंकरदेव द्वारा संस्थापित किए गये 'सत्रीया नृत्य' वर्तमान भारत के आठ प्रमुख

शास्त्रीय नृत्य परम्पराओं में से एक है। जिसे शंकरदेव ने लोगों को धर्म की और आकर्षित करने के लिए सत्रों में प्रदर्शन किया था ।

शंकरी संस्कृति के इस साधना के क्षेत्र में पुरुष के साथ-साथ महिला को भी सम-अधिकार प्राप्त था। शंकरदेव ने महिलाओं को ऊंचा दर्जा देते हुए नामघरों में नारी और पुरुष दोनों को ही नाम-प्रसंग करने का, पोथी पढ़ने का अधिकार तत्कालनी समय में ही प्रदान किये थे, जो आज भी भारत के दूसरे धर्मों में बहुत कम ही नजर आते हैं। यह उत्तर पूर्व की संस्कृति ही है कि कुछ संप्रदायों में आज भी नारी को ही घर का प्रमुख माना जाता है।

दरअचल शंकरी संस्कृति में वाह्यर्याडंबर, मूर्तिपूजा, यज्ञ, हिंसा, बलि-विधान तथा ऊँच-नीच तथा घृणा-द्वेष की भावनाओं का घोर विरोध हैं। शंकरदेव का मूल लक्ष्य केवल लोगों को अपनी ओर आकर्षित करना नहीं था बल्कि समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाना था, एक क्रांति पैदा करना था ।

यह सत्य है कि धर्म एक संस्कृति सम्पन्न कार्यावली है जो मानवीय अभिज्ञता और मानव मूल्यों को प्रोत्साहन देता है। शंकरदेव धर्म को कला के रूप में देखते थे। क्योंकि ये मनुष्य को अच्छे और उन्नत जीवन निर्वाह करने के लिए राह दिखानेवाले संस्कृति संपन्न व्यक्ति थे। शंकरदेव ने अपने भक्ति-धर्म के द्वारा समाज में अस्पृश्यता का निवारण किया, साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रमूल्यों की उत्कर्ष साधन किया, आध्यात्मिक-नैतिक आदि क्षेत्रों में उदारता लाये, लोगों को कर्मो के प्रति आकर्षित कराते हुए जीवन में सत्य और न्याय के पथ चले के लिए अग्राहित किया। उन्होंने मानव को पशु से भिन्न मानकर सामाजिक मर्यादासम्पन्न प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित कराया। तत्कालीन मिश्रित जाति-प्रणाली के कारण समाज में फैली जात-पात की भेदभाव, कृषक, मजदूर, सैनिक, नारी तथा सभी जनगन की असंतोसजन्य स्थिति को सुधारकर सबके लिए सम-भाव सम्पन्न धार्मिक-सांस्कृतिक आदर्शों का स्थापना किया।

उनके द्वारा स्थापित कला आदि जिस तरह लोगों को आनंदित करती हैं, ठीक उसी प्रकार लोगों में सद्भाव और सामाजिक न्याय व्यवस्था को भी सामने लाती है। साथ ही साथ समाज संस्कार के रीति-रिवाज, आध्यात्मिक सोच तथा शिक्षा से भी लोगों को प्रत्यक्ष अपरिचय कराती है। शंकरदेव ने लोगों को यह समझाया कि धर्म व्यवसाय के लिए नहीं है, न ही अपने पांडित्य की प्रदर्शन के लिए, अथवा दूसरों को सताने के लिए है, अपितु आध्यात्मिक उत्कर्ष द्वारा लोगों की मंगल साधन करना ही सही अर्थ में असली धर्म है। जिसके लिए उन्होंने एक ही ईश्वर की उपासना पद्धति को प्रमुखता देते हुए शिक्षा, संस्कृति,

सद्भाव, प्रेम आदि पर अधिक बल दिया। उनकी प्रशंसा जितनी की जाय कम ही है। इसलिए उनके बारे में उनके शिष्य माधवदेव ने लिखा है-

'जय गुरु शंकर
सर्व गुणाकार
जाकेरी नाहिके उपमा ।'[4]

(भावार्थ : अर्थात गुरु शंकरदेव के बारे में क्या कहूँ, वह तो सर्वगुणसंपन्न हैं जिसकी तुलना किसे से भी नहीं किया जा सकता ।)

निष्कर्ष :

भारतीय सन्दर्भ में शंकरदेव का महत्व बहुत ही अधिक है क्योंकि, उन्होंने असम के लोगों को भारतीय संस्कृति से परिचय कराया, आध्यात्मिकता की शिक्षा दी, अंधेरे से उजाले की ओर, असत से सत की ओर तथा माया से मोक्ष की ओर ले गया। उन्होंने अपने उत्तरदायित्व को बखूबी से समझते हुए धर्म के साथ-साथ सांस्कृतिक प्रमुल्य को अधिक महत्व दिया। धर्म और कला का एक मिश्रित रूप लोगों के सामने लाया। उन्होंने अपने भक्ति-धर्म के द्वारा भारतीय संस्कृति को असम के साथ जुड़कर अव्यवस्थित और अशृंखलित समाज को सुधार कर सम्पूर्ण उत्तरपूर्वांचल तक को भारत महिमा तथा गौरव का संदेशा दिया। उनके 'एक शरण नाम धर्म' ने प्रतिकूल परिस्थितियों में अनेक चुनौतियों का सामना कर पूरे भारत के साथ-साथ असम में जिस 'नव-वैष्णव' आन्दोलन का प्रचार-प्रसार किया, वह सही अर्थों में प्रशंसनीय है। शंकरदेव का साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक अवदान अपने आप में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

ग्रंथ-सूची :

1. चलिहा, भवप्रसाद, (सं.): *शंकरी संस्कृतिर अध्ययन*, गुवाहाटी, श्रीमंत शंकरदेव संघ, 1999, पृ. 15.
2. हाजरिका, सूर्य: *श्रीमंत शंकरदेव वाक्यामृत*, गुवाहाटी, बाणी मंदिर, 2014, पृ. 225.
3. महंत, वापचन्द, (सं.): *बरगीत,* स्टूडेंट्स ष्टोर्स कॉलेज हॉस्टल रोड, गुवाहाटी, 1992, पृ. 67.
4. भट्टाचार्य, पराग कुमार: *प्रेमधर्म आरू वैष्णव काव्य.* गुवाहाटी, चन्द्र प्रकाश, 1997, पृ. 22.

डॉ. प्रांजल कुमार नाथ
सहायक अध्यापक, रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय, होजाई, असम
Email: npranjal95@gmail.com